

अनन्तर/जनसत्ता/२ जुलाई, २००६

## ढाका में कान बहादुर

ओम थानवी

यह फिल्म मैंने कुछ अरसा पहले समंदर के रास्ते हेलसिंकी से स्टॉकहोम जाते हुए जहाज पर बने बाजार में खरीदी थी। लौटकर इसे घर की दीवारों के सहारे अनायास खड़ी हो जाने वाली किताबों और फिल्मों की 'मीनारों' में किसी एक पर रख दिया। वक्त काटने के लिए की गई खरीददारी का बारहा यही हश्र होता है।

पिछली दफा जब सार्क सम्मेलन के दौरान ढाका में था तो वहां संसद भवन के सामने से गुजरते हुए इस फिल्म का ध्यान आया। फिल्म के बक्से पर उस इमारत की तस्वीर छपी है। मैंने वापस आते ही फिल्म देखी। तब दूसरा पछतावा हुआ कि ढाका में था और संसद भवन भीतर से नहीं देखा!

अंग्रेजी में शायद इसे ही 'भूलों का विद्रूप' कहते हैं। मगर ऐसी भूलों का सबक भी अच्छा ही होता है। गए हफ्ते एक संगोष्ठी में फिर ढाका जाने का मौका मिल गया। वहां पहुंचते ही सबसे पहले संसद भवन देखा। भीतर और बाहर की संपूर्ण पंक्ति का। तब महसूस हुआ कि मेरे लिए फिल्म अब जाकर पूरी हुई है। परदे पर फिल्म परदे में थी। ताजमहल को आखिर कोई परदे में कितना समेट सकता है!

फिल्म एक वृत्तचित्र है। नाम है: "माइ आर्किटेक्ट: ए सन्स जर्नी"। हमारे यहां वृत्तचित्रों की परंपरा बेढब है। ज्यादातर बीस-तीस मिनट की अवधि के होते हैं और हाशिये की चीज माने जाते हैं। पश्चिमी देशों में वे दूसरी फिल्मों की तरह बनते हैं और तीन-शो में चलते हैं। 'माइ आर्किटेक्ट' ऐसा ही वृत्तचित्र है। उसे माइकल मूर के 'नाइन/इलेवन' जैसी सफलता भले न मिली हो, पर कई देशों में एक साथ दिखाया गया। और फिल्म श्रेष्ठ वृत्तचित्र के रूप में ऑस्कर पुरस्कार के लिए नामजद भी हुई।

'माइ आर्किटेक्ट' बीसवीं सदी के महान वास्तुशिल्पी लुइस कान की कहानी है। कान एस्टोनिया में जन्मे यहूदी थे। मुफलिसी का मारा उनका परिवार सदी के शुरू में ही अपना मुल्क- जो उस वक्त रूस के कब्जे में था- छोड़कर अमेरिका आ बसा था। यहीं पर वंश का नाम स्वमलोस्की से कान हुआ। लुइस इजडोर कान ने सिनेमाघरों में मूक फिल्मों के लिए प्यानो बजाते हुए वास्तुकला की पढ़ाई की। बाद में वे पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय में वास्तुकला के प्रोफेसर के रूप में प्रसिद्ध हुए। लेकिन उन्हें ज्यादा प्रसिद्धि उन इमारतों की वजह से मिली जिनका उन्होंने खाका बनाया, तामीर कराई और उनके परिवेश की रचना की। इनमें येल कला दीर्घा, एक्सीटर अकादमी, साक इंस्टीट्यूट (ल' होया) और टैक्सास का किंगल कला संग्रहालय शामिल हैं। इन इमारतों ने अमेरिकी वास्तुकला की धारा बदल दी।

लेकिन लुइस कान की श्रेष्ठ इमारतें अमेरिका में नहीं हैं। एक अनूठी इमारत उन्होंने भारत में खड़ी की- अमदाबाद में भारतीय प्रबंध संस्थान (आईआईएम)। दूसरी ढाका का संसद भवन संकुल, जिसे उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानने में शायद ही किसी को गुरेज होगा। हालांकि इसका निर्माण बांग्लादेश बनने से काफी पहले- पाकिस्तान की दूसरी असेंबली के रूप में- शुरू हो गया था। पर लुइस कान के जीते जी इसका काम पूरा नहीं हो सका।

काम करने के लिए भीतर की प्रतिभा के साथ बाहर का परिवेश भी बड़ी अहमियत रखता है। यह कान को पूब में मिला। जैसा कि उन्होंने अपने नन्हे बेटे को पाकिस्तान एयरलाइंस के विमान से एक पोस्टकार्ड में लिखा था: "हमारे यहां (पश्चिम में) वास्तुकला चौखटा ज्यादा समझी जाती है, जबकि पूब के लोगों के लिए वह आनंद की अनुभूति है।"

'माइ आर्किटेक्ट' उनके उसी बेटे नथेनियल कान की बनाई फिल्म है।

मगर नथेनियल ने यह फिल्म बनाई क्यों?

लुइस कान को रहस्यवादी वास्तुकार कहा गया है। उनकी इमारतें धूप और छांव के रहस्य कहती हैं। उनकी मृत्यु भी भारत से अमेरिका पहुंचने के बाद पेनसिलवेनिया रेलवे स्टेशन के शौचालय में रहस्य के घेरे में हुई। बाद में पता चला कि उन्हें हृदयाघात हुआ था। उनके दिल पर कर्ज का भारी बोझ था। मौत को नजदीक पाकर उन्होंने पासपोर्ट में अपना पता मिटा दिया। इसका रहस्य भी आज तक नहीं खुला है। उनकी लाश मुर्दाघर में

तीन रोज लावारिस पड़ी रही। पता मिटा कर उन्होंने क्या यह संदेश देना चाहा कि जिसने जीवन भर मकान बनाए, वह अपने लिए कोई घर छोड़ कर नहीं जा रहा है?

यह क्यास है, पर शायद सच हो।

कुछ और रहस्य। कान ने एक शादी की। घर तीन बसाए। यानी समाज के नजरिए से दो 'नाजायज' रिश्ते। तीन घर, तीन संतानें।

नथेनियल तीन संतानों में एक थे।

१९७४ में जब लुइस की मृत्यु हुई तब नथेनियल सिर्फ ग्यारह वर्ष के थे। 'न्यूयार्क टाइम्स' में पहले पेज पर पॉल गोलबर्गर की लिखी श्रद्धांजलि छपी: "ईंटों और सीमेंट की अपनी सुदृढ़ विधा से वास्तुकारों की एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित करने वाले, अमेरिका के जीवित वास्तुकारों में सबसे बड़े, लुइस कान नहीं रहे। वे तिहत्तर वर्ष के थे। अपने पीछे वे पत्नी और एक बेटी छोड़ गए हैं।"

नथेनियल कहते हैं, "जब मैंने वह श्रद्धांजलि पढ़ी, मैं उसमें अपना नाम तलाश रहा था। मैं भी उनकी संतान था। उनका इकलौता बेटा।" लेकिन लुइस ने उनकी मां हैरिएट से शादी नहीं की थी। मां कहा करती थीं, लुइस मौजूदा घर में खुश नहीं हैं और जल्दी ही उनके साथ आकर रहेंगे। ऐसा कभी नहीं हुआ। कभी-कभार लुइस आते, बेटे को सैर कराते और लौट जाते। हां, वे उसे "भारत के हाथियों और शेरों" की कहानियां भी सुनाते थे।

बड़े होने पर नथेनियल ने जाना कि उनके पिता बड़े आदमी थे। लेकिन क्या वे सचमुच उनके साथ आकर रहना चाहते थे? उनका जीवन क्या था? सृजन और विचार क्या थे? यह जानने के लिए नथेनियल ने डेढ़ घंटे से कुछ छोटी यह फिल्म बनाई। "मैं उन्हें जानना चाहता था। वे वास्तव में क्या थे?" इसके लिए वे दुनिया के सफर पर निकल पड़े। उन इमारतों को देखने जो पिता अपने पीछे छोड़ गए थे। उन सवालियों के जवाब ढूंढने, जो नथेनियल के मन में पिता की मृत्यु के बाद तीस साल से उमड़ रहे थे।

नथेनियल फिल्म में लुइस- करीबियों के लिए 'लु'- के दोस्तों, सहयोगियों और रिश्तेदारों से बात करते हैं। अपनी मां और 'बहनों' से भी। एस्टोनिया के उस टापू पर जाते हैं, जहां बचपन में झुलस कर लुइस हमेशा के लिए विरूप हो गए। इजराइल जाते हैं, जहां लुइस नया सिनेगॉग बनाना चाहते थे। भारत आते हैं। बांग्लादेश जाते हैं। टैक्सि चालकों से लेकर पुलिस वालों तक से बतियाते हैं और इस बातचीत के बीच उन इमारतों के सौंदर्य और खूबियों को पकड़ने की कोशिश करते हैं जो उस शख्स की बेजोड़ रचनाएं थीं, जिसने खुद इस फिल्मकार को रचा। लेकिन नथेनियल की वेदना देखिए कि कई जगह अपना परिचय देने के लिए उन्हें अपने जन्म का प्रमाण-पत्र, पिता के पत्र और तस्वीरें तक दिखानी पड़ीं! आखिर लुइस चार्ली चैप्लिन या पिकासो नहीं थे जिन्होंने प्रचार के लिए या इतर कारणों से जीवन के सारे रहस्य जीते जी बेपरदा कर दिए हों।

लुइस के व्यक्तित्व और काम की बारीकियां नथेनियल को कुछ दिग्गज वास्तुकारों से बात करते हुए पता चलती हैं। फिल्म में सबसे पहले वयोवृद्ध फिलिप जॉनसन से बातचीत है। काले गोल चश्मे में- जो ल कार्बूजिए से लेकर चार्ल्स कोरिया तक अब कई वास्तुकारों की पहचान बन चुका है- वे नथेनियल को बड़ी आत्मीयता से बताते हैं कि लुइस वक्त के सबसे चहेते वास्तुकार थे। 'हम सब में तरह-तरह के अवगुण थे, पर लु में प्रेम बहुत था।' इमारतों के प्रति भी, लोगों के लिए भी। फ्रैंक गैहरी आधुनिकता के दौर के व्यावसायिक और यांत्रिक घटाटोप की बात करते हुए कहते हैं कि 'रहस्यवादी' कान किसी ताजी हवा के झोंके की तरह थे। चीनी वास्तुकार आईएम पेई नथेलियन को पिता के काम में आध्यात्मिकता का पुट समझाते हैं। "जीवन में ऐसी तीन-चार इमारतें बनाना बेहतर है, पचास-साठ दूसरी इमारतें खड़ी करने से।" मोशे सफदी कान को "ठेठ दिल से" एक बंजारा बताते हैं: "वे कभी भी आ सकते थे, चल दे सकते थे। मुझे कोई हैरानी नहीं हुई जब सुना कि वे एक रेलवे स्टेशन पर पूरे हुए।"

वृत्तचित्र की खूबी यह है कि पिता की 'तलाश' में नथेनियल स्वाभाविक तौर पर जब-तब खुद दृश्यों में मौजूद रहते हैं, लेकिन देर तक फिल्म को लदी हुई भावुकता या अपने दुख से बचाए रखते हैं। नजदीक के दृश्यों को समेटता कैमरा ऐसी घड़ियों में अक्सर दृश्य का विस्तार दिखाने लगता है। मसलन, इमारतों का संयोजन, उनका आकार, खुलापन और आकाश। यही वजह है कि फिल्म अपने लक्ष्य से फिसलती नहीं है। फिल्मकार के साथ-साथ आप भी एक शख्सियत का आविष्कार करते चलते हैं। एक कलाकार और विचारक, जो नितांत मानवीय है- जीवन के दुर्बल पहलुओं में भी। फिल्म में लुइस कान के कई दुर्लभ 'फुटेज' सलीके से इस्तेमाल किए गए हैं। इनमें उनके व्यक्तित्व की कर्मठता, गूढ़ता, जिंदादिली, यहां तक कि विनोदशीलता भी बखूबी उजागर होती है। हां, वास्तुकार के व्यक्तित्व पर ज्यादा केंद्रित होने के कारण इमारतों का शिल्प फिल्म में ठीक

से नहीं उभर पाता। दीवारें, छतें और खिड़कियां तो अपनी छाप हम पर छोड़ती हैं, फर्श, गलियारे और दरवाजे आदि नहीं। हम नहीं जान पाते कि सीमेंट के भारी प्रयोग के बाद भी गरम इलाके की इमारत को वे मौसम की आंच से कैसे बचाते थे। असल में वे ऐसे में भीतर की तरफ लकड़ी का भरपूर इस्तेमाल करते थे।

फिल्म के संगीत (जोसफ वितारेली) की तारीफ यह है कि वह बेवजह आपका ध्यान अपनी ओर नहीं खींचता। पर फिल्म की भंगिमा को बनाए रखता है। कभी ज्यादा असरदार भी बनाता है। खासकर चुप्पियों में। कहीं-कहीं आवाजें ही बड़ी खूबसूरती से संगीत की जगह ले लेती हैं; जैसे पतंग उड़ाने वालों का शोर, बाजार की चिल्ल-पों, नथेनियल के शौकिया कैमरे की खर्र-खर्र। लेकिन मुझे सबसे प्रभावी प्यानो का प्रयोग लगा, जो बरबस वांग कार वाई की फिल्म 'इन ए मूड फॉर लव' के संगीत की याद दिलाता है। गरीबी के दिनों में लुइस कान सिनेमाघरों में प्यानो ही बजाते थे।

यात्रा के आखिरी चरण में नथेनियल अमदाबाद पहुंचते हैं। फिर ढाका। दिवंगत शिल्पकार इसामु नोगुची ने लुइस कान को "वास्तुकारों के बीच एक दार्शनिक" कहा था। अमदाबाद में हमारे जाने-माने वास्तुकार बीबी दोषी आईआईएम की लाल ईंटों वाली चिर-परिचित दीवारों और विशाल गोलाकार खिड़कियों की छंव में नथेनियल को उनके पिता के दर्शन और भारतीय तत्त्व-चिंतन की बारीकियां समझाते हैं। शायद यहीं पहुंचकर नथेनियल का अनाथ भाव तिरोहित होता है।

दोषी कहते हैं: "लुइस के लिए शून्य, खिन्नता और मौन बहुत अहमियत रखते थे। प्रकाश के रहस्य उन्हें अपनी तरफ खींचते थे। वे साधारण आदमी नहीं थे। हम ऐसे व्यक्ति को गुरु या योगी कहते हैं। लगता था जैसे यहीं के हों। भारत में हम मरण को नहीं मानते; उसे एक गमन मानते हैं, इधर से उधर। वे यहीं-कहीं होंगे। तुम अपने पिता की इमारतों में रचे मौन को सुनो तो निश्चय मानो तुम उनकी आवाज और आसीस को भी सुन सकोगे।"

हमें नथेनियल की उदास आंखों में एक स्निग्ध चमक तैरती दिखाई देती है। वे आगे ढाका के लिए चल पड़ते हैं। सहसा उनके मुंह से निकलता है: सचमुच लगने लगा है पिता, जो किसी बच्चे की तरह बिछुड़ गए, मुझे यहां मिल जाएंगे!

ढाका में नथेनियल कई लोगों से मिलते हैं। उस व्यक्ति से भी जो उनके पिता की पेंसिलें छीलता था। फिल्म के चरम दौर में वे प्रत्यक्ष रूप से भावुक हैं। सुबह संसद भवन के सामने सैर करने वालों से मुखातिब हैं। अब एक बुजुर्ग की आंखें भीगी हैं। "तुम उनके बेटे हो?... उन्होंने यह इमारत नहीं दी है भाई, हमें हमारी पहचान दी है।"

फिर दोपहर को संसद भवन के गलियारे में वास्तुकार शम्सुल वारिस से साक्षात्कार है। वे भीतर तक कृतज्ञ हैं। बोलते हुए अचानक उनकी आंखें भी सजल हो आती हैं: "यह दुनिया का सबसे गरीब मुल्क है। उन्हें नहीं पता था इतना पैसा कहां से आएगा या इमारत कैसे पूरी होगी। मगर उन्होंने नामुमकिन को मुमकिन कर दिखाया। सत्तर साल की उम्र में अमेरिका से अकेले यहां आते थे। जरा रोशनी और जगह के वक्फों की परतें तो देखिए। वे हमारे लिए मोजेज बनकर आए। हमें आजादी का अहसास दिया। हम उन्हें कुछ नहीं दे सके। पर उन्होंने जान दे दी।... वे तुम्हें पिता का प्यार जरूर नहीं दे सके। लेकिन जो दुनिया को प्यार बांटता हो उसे घर की परवाह कहां रहती है!"

फिल्म खत्म होती है। फिल्मकार के इस कथन के साथ: यात्रा के इस मुकाम पर मैंने अपने पिता को ठीक से पहचाना। मैंने अपने आपको उनके करीब महसूस किया। और जाना कि वे मनुष्य थे, कोई दास्तान नहीं।

'माइ आर्किटेक्ट' देखने के बाद लुइस कान के काम को समझने की मेरी इच्छा और बलवती हुई। युवा वास्तुकार कबीर वाजपेयी ने मुझे लुइस कान की कुछ उमदा वार्ताओं का संकलन पढ़ने को दिया। फिल्म देखकर मैं जो नहीं जान सका, कान के विचारों ने उन्हें परत-दर-परत साफ कर दिया। वास्तुकला के मूल तत्त्वों और उनके व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं का ऐसा बारीक और ईमानदार विवेचन मैंने पहले शायद ही पढ़ा हो। यहां वे सचमुच एक विचारक और शिक्षक के रूप में प्रकट होते हैं, सिर्फ वास्तुकार के रूप में नहीं। कहीं-कहीं लगता है, भारतीय चिंतन-धारा का भी उन पर प्रभाव है। जैसे एक जगह वे कहते हैं कि कोई इमारत अपने में वास्तुकला नहीं कही जा सकती, वह सिर्फ नैवेद्य है।

कान कहते हैं, मनुष्य होने का मतलब अपने आपको अभिव्यक्त करना है। अभिव्यक्ति जीने का सबब है। कला अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है। विज्ञान उनका सेवक है। विज्ञान महज उसकी बात करता है जो है; जबकि कलाएं जो नहीं है, उसकी रचना करती हैं। जो काम प्रकृति कर सकती है, वह मनुष्य नहीं कर सकता।

जो काम मनुष्य कर सकता है, प्रकृति नहीं कर सकती।... आप अपनी विधा में चरम उपलब्धि कभी हासिल नहीं कर सकते, जैसे मानव अपने आप को कभी पूरा नहीं समझ सकता। लेकिन वह इसका सतत प्रयास जरूर करता है।

लेकिन चरम उपलब्धि का फैसला कौन कर सकता है? मुझे नहीं मालूम। पर पिछले इतवार मैं फिर ढाका में संसद भवन की देहरी पर खड़ा था। लुइस कान की सर्वश्रेष्ठ देन के सामने। हतप्रभ और निःशब्द। दूर से ही देखें तो इस पूरे संकुल पर कान की शैली की साफ छाप है। लेकिन उनका यह काम बहुत अलग है। सवा दो सौ एकड़ के परिसर में संसद भवन बीचोबीच है। कान सीमेंट और ईंटों के तालमेल के लिए जाने जाते हैं। यहां संसद भवन की इमारत में कहीं ईंट का प्रयोग नहीं है। पूरी इमारत सीमेंट की है। जबकि बाहर पूर्व और पश्चिम की दूसरी सहयोगी इमारतें पूरी तरह ईंटों से बनी हुई हैं।

संसद भवन एक बनाई गई झील पर खड़ा है। जैसे पानी में तैर रहा हो। यह शायद सत्ता के क्षणभंगुर होने का इशारा है। भवन को बाकी दुनिया से एक छोटा-सा पुल जोड़ता है। पानी के पार खूब हरियाली है। संसद भवन परिसर की एक खूबी यह भी है कि आम आदमी उसके काफी करीब जा सकता है। मैंने सुबह-शाम रोज वहां लोगों का हुजूम देखा।

इस इमारत को देखकर आपको चंडीगढ़ स्थित पंजाब-हरियाणा की विधानसभा का खयाल आ सकता है। उसे ल कार्बूजिए ने बनाया था, जिन्हें कान बहुत पसंद करते थे। लेकिन ढाका की इमारत ज्यादा सुंदर है। उसमें प्रतीकात्मकता बहुत है। जैसे आप किसी गलियारे में हों तो आपको कई बालकनी और जीने एक साथ दिखाई पड़ते हैं। लगता है कई दिशाओं में लोग साथ आ और जा रहे हों। चंडीगढ़ के गलियारे देखकर लगता है मानो सारा संसार एक दिशा में जा रहा हो। वह इमारत भी अलग-थलग और कुछ सोई हुई सी है। ढाका का संसद भवन सजीव है। बाहरी दीवारों पर खिड़कियों के रूपाकार और सफेद संगमरमर की आड़ी-सीधी समांतर रेखाएं सीमेंट की नीरस छवि को जैसे काटती चलती हैं। हालांकि सजीव इमारत सोए हुए सांसदों को कितना जगा सकती है, यह दूसरी बात है। जैसे एक सुंदर पुस्तकालय पुस्तकों के पाठ को आश्वस्त नहीं कर सकता। संसद भवन का पुस्तकालय सुरुचिपूर्ण है। उसका वाचनालय एक बड़ी छतरी की तरह है। इसके ठीक बीच एक स्तंभ है जिससे छत के साथ सटे सोलह फलक आकर जुड़ते हैं। इमारत के कक्षों में पूर्वी दीवारों पर लकड़ी जड़ी है। इनके बीच ऊपर से नीचे संगमरमर की पट्टी चलती है।

भारत और बांग्लादेश में कान ने दोनों इमारतों में गोल और चंद्राकार खिड़कियों का भरपूर प्रयोग किया है। सूर्य और चंद्रमा प्रकाश के आदिम प्रतीक हैं। और कान उनसे धूप और छांव के जादुई रूप रचते हैं। मानो कोई इमारत न हो, रोशनी का छंद हो। ढाका के भवन में मैंने लक्ष्य किया कि वहां तिकोनी खिड़कियां भी हैं, मानो मुकुट हों। कहीं-कहीं शीशे के लंबे झरोखे हैं। ऊपर गोल भव्य रोशनदान हैं। संसद के मुख्य भवन में- जिसमें साढ़े तीन सौ सांसद बैठते हैं- ऊपर कसे हुए तंबू की शकल में छत है। उसके पीछे से भी दिन की रोशनी नीचे आती है। जाहिर है, पूरी इमारत में खिड़कियां, झरोखे और रोशनदान मिलकर महज ज्यामितिक रूपाकार पेश नहीं करते, वे पूरी संसद को एक जीता-जागता रोशनीघर बनाकर रख देते हैं। लोकतंत्र में- भले प्रतीक के लिए सही-इससे बेहतर उपलब्धि और क्या हो सकती है?